भाग - 2

भारतीय भाषाएँ व संविधान

रमाकान्त अग्निहोत्री

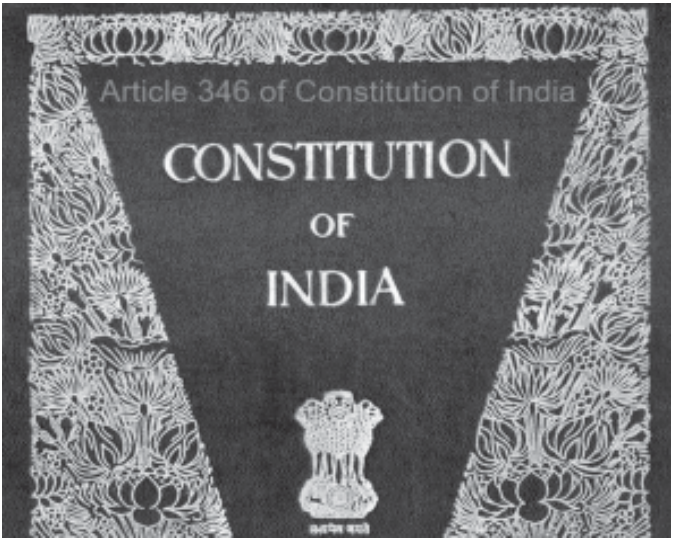

संविधान सभा को केवल राजभाषा, राष्ट्रभाषा या लिपि के सवालों को ही नहीं सुलझाना था, और भी कई सवाल थे। आज हमें लगता होगा कि भाषा व लिपि का सवाल बहुत सरल रहा होगा संविधान सभा के लिए, इसके ठीक विपरीत वास्तव में, संविधान सभा के सदस्य नज़िरुद्दीन अहमद साहिब का कहना था कि हिन्दी अभी देश की भाषा होने के लिए तैयार नहीं है। जिस भाषा को देश की भाषा बनना हो उसके उत्तम लेखक व दार्शनिक होने चाहिए; उसमें लिखने वाले कलाकार व वैज्ञानिक होने चाहिए। हिन्दी अभी वैसी भाषा नहीं है। फिर भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का बोल-बाला होने लगा। संविधान सभा के मुस्लिम साथियों को अचानक लगने लगा कि वे जैसे किसी और देश में आ गए हों। हिफज़ुर रहमान हैरान थे कि कल तक सब लोग खुश थे कि हिन्दुस्तानी देश की राष्ट्रभाषा होगी और वह दोनों लिपियों, यानी फारसी व देवनागरी, में लिखी जाएगी। फिर अचानक यह

सब क्या हो गया? गाँधीजी बड़े उत्साह के साथ हिन्दी साहित्य सम्मलेन का हिस्सा बने। पर उन्हें जैसे ही पता लगा कि यह संस्था हिन्दी व उर्दू को अलग-अलग करना चाहती है और हिन्दुस्तानी जो कि आम लोगों की भाषा थी, उससे अलग करना चाहती है तो उन्होंने एकदम उससे त्यागपत्र दे दिया। हिन्दुस्तानी के सामान्य शब्दों को संस्कृत या फारसी शब्दों से बदलना उन्हें गवारा नहीं था। हिफज़ुर रहमान को लगा कि संविधान सभा भाषा को लेकर निरन्तर गाँधीजी के सपने से दूर जा रही है। उनका कहना था कि उर्दू कोई अरब, ईरान या स्पेन से नहीं आई, वह तो भारत की अपनी भाषा है।

एच.एम. सेरवाई (1983) के अनुसार गाँधीजी को राष्ट्रभाषा की चिन्ता थी। इस भाषा को वह कभी हिन्दी कहते तो कभी हिन्दुस्तानी। लेकिन उनके लेखन से यह साफ है कि इससे उनका तात्पर्य संस्कृतनिष्ठ हिन्दी या फारसीकृत उर्दू से कदापि नहीं था और उनका मानना था कि काँग्रेस को इसके बारे में स्पष्ट मत रखना चाहिए। इस बात से किसी को इनकार नहीं था कि नए आज़ाद देश की नई भाषागत पहचान होनी चाहिए। यह पहचान अभी तक काफी हद तक अँग्रेज़ी ने बनाई हुई थी जो उत्तर व दक्षिण भारत को जोड़ती थी। लेकिन अब क्या किया जाए?

चित्र-1: डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारतीय संविधान प्रस्तुत करते हुए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर।

जैसा हमने इस लेख के भाग-1 में देखा, उर्दू के लिए संविधान में कोई विशेष जगह नहीं थी। यही रास्ता निकाला गया कि राष्ट्रभाषा की बात ही न की जाए। केवल राजभाषा की बात हो और उसकी लिपि देवनागरी रहे। वास्तव में संविधान में लगभग सभी बातें तर्क से कम, सहमति से अधिक निश्चित हुईं। उस समय तार्किक दृष्टिकोण से क्या उचित रहता, यह कहना बड़ा मुश्किल है। यही उचित समझा गया कि बहुजन की सहमति से सुरक्षित बातों को माना जाए। इसमें एक हाथ कुछ ले लो और दूसरे हाथ कुछ दे दो की प्रक्रिया रहती है। लिपि देवनागरी लेकिन अंक अन्तर्राष्ट्रीय। हिन्दी के साथ-साथ अँग्रेज़ी भी राजभाषा। लोग नहीं माने तो यह प्रावधान भी रख लिया कि 15

चित्र-2: भारतीय प्रान्तों की विभिन्न भाषाएँ। भारतीय मुद्रा पर मूल्य 17 भाषाओं में छपा है।

साल बाद अँग्रेज़ी को हटा दिया जाएगा। शायद अधिकतर लोगों को उस वक्त भी मालूम होगा कि यह सम्भव नहीं होगा। साथ-साथ आठवीं सूची भी बना दी गई और उसमें 14 भाषाएँ दर्ज कर दी गईं। आज भी हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का कोई सहज फैसला नहीं हुआ है। बहुत लोग संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानते हैं या बनाना चाहते हैं। आम लोगों की भाषा आज भी हिन्दुस्तानी है। अनेक स्कूलों में आज भी उर्दू पढ़ाई जाती है। साहित्य में हर तरह का लेखन मिलता है। असली बात तो यह है कि संरचना के आधार पर एक ही भाषा की इन तीनों शैलियों में कोई विशेष अन्तर नहीं, केवल शब्दों को छोड़कर। हिन्दुस्तानी को थोड़ा फारसी व अरबी शब्दों की तरफ ले जाओ तो वह उर्दू, अक्सर फारसी लिपि में और उसी भाषा को संस्कृत शब्दों की तरफ ले जाओ तो वह हिन्दी, अक्सर देवनागरी लिपि में। बस अन्तर अगर है भी तो लिपि और शब्दों का। आम बोलचाल की भाषा में तो वह भी नहीं। पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू है; हिन्दुस्तान की राजभाषा हिन्दी। पर आज भी दोनों देशों के वासी आपस

में आराम से बातचीत करते हैं, जब ज़रूरत होती है!

संविधान सभा के सामने केवल राष्ट्रभाषा या राजभाषा का ही सवाल नहीं था। अनेक अन्य अहम मुद्दे थे जिन पर ध्यान देना आवश्यक था। अल्पसंख्यक समुदायों की भाषाओं का क्या होगा? क्षेत्रीय भाषाओं का क्या होगा? व्यक्ति-विशेष के भाषागत अधिकारों का क्या होगा? न्यायपालिका की भाषा क्या होगी? यदि लोगों को अपनी बात कहनी हो और उन्हें अँग्रेज़ी या हिन्दी न आती हो तो उनका क्या होगा? इस तरह के कई प्रश्न संविधान सभा के लिए चिन्ता का विषय थे।

भाग 17 के दूसरे अध्याय का शीर्षक हैः 'क्षेत्रीय भाषाएँ'। इसमें 3 अनुच्छेद हैं, 345 से लेकर 347 तक। कई क्षेत्रीय भाषाएँ राष्ट्रभाषा/राजभाषा की बहस में अपने दावे करती रही थीं। इनमें संस्कृत, बांग्ला, तेलुगु व तमिल मुख्य थीं। और अँग्रेज़ी के अपने दावे थे। उर्दू को लेकर भी कई लोगों के मन में मलाल था। फिर भी कोई-न-कोई सहमति तो बनानी ही थी। सबको खुश रखना था। इसका एक तरीका तो आठवीं सूची के ज़रिए निकाला गया जिसके बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे। आठवीं सूची को अपरिपक्व अद्भुत प्रतिभा का खास नमूना (stroke of raw genius) माना गया।

अनुच्छेद 345 राज्यों की राजभाषा या राजभाषाओं के बारे में है। इससे हर राज्य को अपनी राजभाषा चुनने की आज़ादी मिलती है। साफ है कि इससे अलग-अलग पक्षों को काफी सुकून मिला होगा। किसी भी राज्य की विधान सभा, विधि द्वारा यह फैसला कर सकती थी कि उसे अपने राज्य में किस राजभाषा का प्रयोग करना है। यह भाषा उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से कोई भी हो सकती है और इसका प्रयोग सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए हो सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जो काम अँग्रेज़ी में होता रहा है, अँग्रेज़ी में ही होगा। इस अनुच्छेद के चलते कई राज्यों की अपनी-अपनी राजभाषाएँ हैं, हिन्दी व अँग्रेज़ी के अलावा। नागालैंड की कई हैंः आओ, अंगामी, सेमा, लोथा व कोन्याक। इसी तरह जम्मू व कश्मीर की भीः कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, लद्दाखी, पहाड़ी, पंजाबी व दादरी। उत्तर प्रदेश में भी हिन्दी एवं उर्दू को लेकर काफी हलचल रही और बड़ी-बड़ी अदालतों में मुकदमे लड़े गए।

अनुच्छेद 346 का वास्ता राज्यों के एक-दूसरे से सम्प्रेषण के हेतु व राज्य व संघ में सम्प्रेषण हेतु है। जब तक कुछ संवैधानिक बदलाव नहीं हो जाते, तब तक संघ की राजभाषाएँ ही सम्प्रेषण का माध्यम रहेंगी। यदि दो या अधिक राज्य यह मान लेते हैं कि उन राज्यों के बीच बातचीत की राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो यह किया जा सकेगा। अनुच्छेद 347 में राष्ट्रपति को विशेष अधिकार दिए गए। इस अनुच्छेद में

इस बात का प्रावधान रखा गया कि यदि किसी राज्य में पर्याप्त संख्या में लोग किसी भाषा को बोलते हों और यह चाहते हों कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को मान्यता दी जाए तो इसकी अनुमति राष्ट्रपति दे सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय के सामने 1997 में एक केस आया (https://www.sci.gov.in/jonew/judis/41872.pdf)। यह उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मलेन की अपील थी उत्तर प्रदेश सरकार के एक कानून के खिलाफ (अपील 459 ऑफ 1997)।

1951 में उत्तर प्रदेश सरकार ने फैसला किया कि हिन्दी उत्तर प्रदेश की राजभाषा होगी। लेकिन 1989 में इसमें एक सुधार भी किया कि उर्दू उत्तर प्रदेश की सह-राजभाषा होगी। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मलेन का मानना था कि यह बात असंवैधानिक है। इस बात का फैसला तो सुप्रीम कोर्ट ही कर सकती थी।

इलाहाबाद हाई कोर्ट का तो फैसला था कि यह बात न्यायसंगत है। सुप्रीम कोर्ट ने भी उत्तर प्रदेश सरकार के अधिनियम को विधिवत व संवैधानिक माना। अनुच्छेद 345 व 347 का हवाला देते हुए कोर्ट ने कहा कि सरकार को यह अधिकार है कि वह भाषा के प्रति दिए गए लोगों के सुझावों का सत्कार करे और उन्हें अपनी प्रशासनीय नीति में शामिल करे। सुप्रीम कोर्ट का कहना था कि भाषागत भारतीय कानून कठोर नहीं हैं अपितु उदार हैं। उनका उद्देश्य भाषाई निरपेक्षता प्रोत्साहित करना है। यह फैसला लेने में सुप्रीम कोर्ट ने बी. शिव राव व उनके साथियों द्वारा लिखी किताब (1968) के भी कुछ अंश इस्तेमाल किए।

...जारी

रमाकान्त अग्निहोत्रीः दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त। व्यावहारिक भाषा-विज्ञान, शब्द संरचना, सामाजिक भाषा-विज्ञान और शोध प्रणाली पर विस्तृत रूप से पढ़ाया और लिखा है। 'नेशनल फोकस ग्रुप ऑन द टीचिंग ऑफ इंडियन लैंग्वेजिज़' के अध्यक्ष रहे हैं। आजकल विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में एमेरिटस प्रोफेसर हैं।

इन सभी लेखों का आधार संविधान के अध्याय 17 के अनुच्छेद हैं। इनका संसद से पारित कोई हिन्दी मानकीकृत रूप उपलब्ध नहीं है। इसलिए सरल हिन्दी में संविधान के इन अनुच्छेदों के बारे में बातचीत की गई है। जहाँ कहीं सम्भव हुआ, इंटरनेट से मदद ली गई है।

सन्दर्भः

- Seervai, H M (1983). Constitutional Law of India: A Critical Commentary. Bombay: Tripathi
- Shiva Rao, B et al (1968). The Framing of India's Constitution: A Study. Delhi: The Indian Institute of Public Administration

— — — — — — — — —